कृषक विद्रोह

औपनिवेशिक शोषणकारी नीतियों के फलस्वरूप भारत में जनविद्रोहों की नई श्रृंखला सामने आई जिसमें कृषक विद्रोह महत्वपूर्ण रहा। औपनिवेशिक भारत में किसान विद्रोह का इतिहास खुद उपनिवेशवाद जितना ही पुराना है। लेकिन औपनिवेशिक भारत में स्थायी रूप से बसे हुए किसान समुदायों के आंदोलनों के उद्देश्य आमतौर पर बेहद सीमित थे और आदिवासी विद्रोहों की तुलना में उन्होंने कम हिंसक तरीके इस्तेमाल किए। एक विशेष बात यह भी है कि कृषक विद्रोहों का स्वरूप प्रायः ब्रिटिश विरोधी नहीं रहा, जबकि जनजातीय विद्रोहों का स्वरूप प्रायः सदैव ब्रिटिश विरोधी ही बना रहा। संभवतः यही कारण था कि सरकार ने कृषक विद्रोहों में कृषकों को किसी न किसी रूप में राहत प्रदान की जबकि जनजातीय विद्रोहों का निर्ममता से दमन कर दिया गया। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि अलग-अलग क्षेत्रों में किसान आंदोलन के उद्देश्यों, सामाजिक गठन और तौर-तरीकों में विभिन्नता थी। एक क्षेत्र में भी अलग-अलग समय में इसने अलग-अलग शक्ल अख्तियार की। इन आंदोलनों में धर्म, जाति, क्षेत्र तथा स्थानीय भावनाएँ जैसे मुद्दे भी मिल गए थे।

कृषक विद्रोह का स्वरूप :-

पिछले दशकों में इतिहास को नीचे से ऊपर की ओर देखने की परंपरा का इतिहास लेखन में विकास हुआ। इतिहास लेखन की इस परंपरा को सबअल्टर्न स्कूल कहा जाता है। हाल के दशकों में इस स्कूल से संबंधित अनेक इतिहासकारों ने समाज के इन वर्गों का विशद अध्ययन करने का प्रयास किया है। इस संबंध में एक मुख्य बात यह भी है कि ब्रिटिशकाल में इन विरोधों के संबंध में जो कुछ भी लिखा गया, वह इन विरोधियों के बजाय अंग्रेजों द्वारा लिखा गया, इसलिए उन्होंने संभवतः पक्षपात के कारण ऐसे जनविद्रोहों को बर्बरतापूर्ण, हिंसात्मक, सांप्रदायिक एवं डकैती आदि बताया है। सरकार के दस्तावेजों, गुप्त रिपोर्टों, अधिकारियों के पत्र व्यवहार आदि में सदैव इन विद्रोहों के प्रति दमनीय विवेचन किया गया है। निःसंदेह सरकार के दृष्टिकोण से इस प्रकार के लेखन को अनुचित भी नहीं ठहराया जा सकता, किंतु हाल के शोध कार्यों ने इस बात पर भी बल दिया है कि इन भारतीयों का संघर्ष केवल ब्रिटिश सरकार के प्रति नहीं था, अपितु अपना शोषण करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के खिलाफ था। इस नये शोधों में ऐसे जनविद्रोहों को विद्रोहियों की ओर से भी समझने का प्रयास किया गया है।

इतिहासकारों द्वारा किए गए अध्ययनों से यह एक महत्वपूर्ण समस्या सामने आई कि अनपढ़ होने के कारण किसान इन विद्रोहों के संबंध में कोई लिखित प्रमाण नहीं छोड़ गए। सबअल्टर्न स्कूल के इतिहासकार "रंजीत गुहा" ने अपने इतिहास लेखन में विद्रोहियों के कार्यों, संगठनों एवं प्रयासों को गहराई से विश्लेषित करने का प्रयास किया है।

यूरोप के इतिहासकारों पीटर बर्क, हॉब्सबॉम, क्रिस्टोफर हिल, लेफेब्रे, ई. पी. थामसन आदि द्वारा जनविद्रोहों में किसानों, कारीगरों एवं अन्य आम लोगों की भूमिका पर विशेष प्रकाश डाला गया है।

अपने एक लेख में अंग्रेजी शासनकाल के दौरान घटित किसान विद्रोहों का अध्ययन करते हुए इतिहासकार कैथलीन गफ ने यह स्पष्ट किया है कि इन विद्रोहों को उद्देश्यों, विचारों और संगठन के [illegible] तरीकों के आधार पर पांच श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है :-

(i) पुनः स्थापन विद्रोह – पूर्वस्थित शासकीय तथा सामाजिक संबंधों को पुनः स्थापित करना
(ii) धार्मिक आंदोलन – अपने क्षेत्र को स्वतंत्र करने के लिए एक समुदाय विशेष द्वारा शुरू किए गए प्रयास
(iii) सामाजिक डकैती – साहूकारों, बनियों एवं जमींदारों के यहां डकैती
(iv) आतंकवादी प्रतिशोध – हिंसात्मक आंदोलन के द्वारा सामाजिक न्याय प्राप्त करने का प्रयास
(v) विद्रोह – विशेष उत्पन्न कष्ट या कारण को दूर करने का प्रयास

विद्रोहों का उद्देश्य केवल पुरानी व्यवस्था को दोबारा स्थापित करना ही नहीं था, बल्कि अपनी स्थिति को सुधारने के लिए नए परिवर्तन की कल्पना भी थी।

ब्रिटिश शासनकाल के दौरान सभी जन विद्रोह स्वत ही समय या स्वतः ही कारणों का परिणाम नहीं था। फलतः पारिभाषिक वर्गीकरण की व्याख्या भी आवश्यक है। इसके अंतर्गत तीन वर्गों को स्पष्ट किया जा सकता है —

(क) प्राथमिक विरोध आंदोलन – इनकी उत्पत्ति प्राक्-औपनिवेशिक और अपरिवर्तित सामाजिक राजनीतिक ढांचे में हुई। ऐसी व्यवस्था में जब बाहरी तत्वों ने अनुचित हस्तक्षेप किया तो उसके खिलाफ परंपरागत शासकीय वर्ग जैसे राजाओं, जमींदारों आदि ने जनसाधारण का नेतृत्व प्रदान किया जिनका उद्देश्य पुरानी व्यवस्था को दोबारा स्थापित करना था। अंग्रेजी उपनिवेशवाद के विस्तार के समय ऐसे आंदोलन हुए।

(ख) गौण विरोध आंदोलन – ऐसे विद्रोह उन परिस्थितियों में हुए जहां परंपरागत और स्थापित व्यवस्था तथा संबंधों के कमजोर होने के साथ-साथ औपनिवेशिक नियंत्रण स्थापित हो चुका था। फलतः नए व्यक्तियों द्वारा इस विद्रोह का नेतृत्व किया गया जिसका उद्देश्य औपनिवेशिक शोषण का विरोध और समाज और स्थापित ढांचे में मूलभूत परिवर्तन करना था।

(ग) भौतिक विरोध आंदोलन — कृषकों की शिक्षित व्यक्तियों ने नेतृत्व प्रदान किया और उन्होंने अपने आदेशों और उद्देश्यों को धार्मिक आधार पर सही सिद्ध किया।

1857 से पहले जो जन विद्रोह हुए उनमें प्रथम दो वर्ग दिखाई देते हैं।

कृषक विद्रोह के कारण :—

(1) औपनिवेशिक शासन के द्वारा अर्थव्यवस्था, प्रशासन और भू-राजस्व प्रणाली में परिवर्तन

(2) ज्यादा से ज्यादा लगान वसूलना और लगान की ऊंची दरें जिसके कारण कृषक या तो कर्ज के बोझ तले दबते चले गए या उन्हें अपनी जमीन बेचने पर मजबूर होना पड़ा।

(3) नए भूस्वामियों द्वारा किसानों को पट्टे पर दी गई जमीनों का किराया बढ़ा दिया जाना और किराया न चुका पाने के कारण इन्हें बेदखल कर देना

(4) नए कानूनी तंत्र और अदालतें भी गरीब किसानों के लिए सुलभ नहीं थे

(5) पुलिस, प्रशासन और न्यायपालिका में निचले स्तर पर व्याप्त भ्रष्टाचार

(6) जन धार्मिक नेताओं और परंपरागत रूप से बौद्धिक तबके द्वारा विद्रोह को उपजाने में सक्रिय भूमिका — दरबारों के पैसे पर पलने वाले ढेरों कवियों, लेखकों, संगीतज्ञों व अन्य कलाकारों और पुजारियों, पंडितों, मौलवियों आदि की हालत भी खस्ता हो गई थी क्योंकि उनका पोषण करने वाले राजाओं की हैसियत अब नहीं रह गई थी। ब्रिटिश राज द्वारा उन पर ध्यान नहीं दिया गया था।

(7) ब्रिटिश शासन का पूरा चरित्र विदेशी था।

(8) 1857 के बाद आए परिवर्तन – 1857 के बाद भू-राजस्व का महत्व कम हो गया था। सूदखोर व्यापारी अस्तित्व में आए। जमीन खरीद फरोख्त की वस्तु बन गई। वास्तविक जमीन जोतने वाले बटाईदार भूमिहीन मजदूर बनकर रह गए। फलतः काश्तकारी अधिकार और लगान के मुद्दों पर विद्रोह हुए। गरीब और धनी किसानों के बीच बटाईदारी एवं कृषि मजदूरी के सवाल पर भी उठ रहे थे।